International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

वैदिककालीन नारी की शिक्षा : एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

श्रीमती भावना सिंह[1], डॉ० अशोक कुमार वर्मा[2]

[1]शोधार्थिनी, सहायक आचार्य (संस्कृत), एम० एल० के० (पी० जी०) कॉलेज, बलरामपुर (उ०प्र०)
[2]शोध निर्देशक, सहायक आचार्य (संस्कृत), जवाहर लाल नेहरू स्मारक पी० जी० कॉलेज, महराजगंज (उ०प्र०)

सारांश

भारतीय इतिहास में यदि नारी की स्थिति पर प्रकाश डाला जाए तो सर्वप्रथम वैदिककालीन नारी के विषय में उल्लेख उपलब्ध है। वैदिक काल भारतीय समाज की नींव का महत्त्वपूर्ण समय रहा है। इस समय धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में उन्नति देखी गई जिसका प्रभाव अद्यपर्यन्त परिलक्षित होता है। वैदिक काल लगभग १५०० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक स्वीकारा गया है। वैदिक काल में ही वर्णव्यवस्था के आधार पर समाज का विभाजन हुआ जिसने न केवल तत्कालीन पुरुषों के जीवन को अपितु महिलाओं की स्थिति को भी प्रभावित किया। इस शोधपत्र में शोधार्थिनी ने वैदिक काल में महिलाओं की शिक्षा का वर्णव्यवस्था के विशेष सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने का प्रयास करते हुए यह जानने का प्रयास किया है कि क्या वैदिककालीन समाज में नारी को जो देवीस्वरूपा स्थान प्राप्त था वह समस्त वर्णों में एकसदृश था अथवा केवल किसी वर्णविशेष की नारी को उत्कृष्ट स्थान एवं अधिकार प्राप्त थे। जिन विदुषी स्त्रियों के उल्लेख उपलब्ध हैं क्या वे सभी वर्णों का प्रतिनिधित्व करती हैं? इस शोध पत्र में वर्णव्यवस्था आधृत नारियों के अधिकार एवं सामाजिक स्थान पर भी दृष्टिपात किया गया है।

मुख्य शब्द- वैदिक काल, वर्णव्यवस्था, ऋषिकन्या, शिक्षा, अधिकार, कर्त्तव्य, विदुषियाँ, सीखना, अनुकरण, प्रवृत्ति आदि।

शोध-क्षेत्र- वेद।

शोध प्रविधि- वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक।

वैदिक काल में वर्णव्यवस्था को प्रारम्भिक रूप जो विकसित हुआ था वह अत्यन्त कठोर नहीं था। तत्कालीन समाज में वर्णव्यवस्था गुण और कर्माधारित थी, जन्माधारित नहीं। पुरुष सूक्त में चतुर्वर्णों का उल्लेख अवश्य प्राप्त होता है किन्तु उसमें कहीं ऐसा अभिप्राय परिलक्षित नहीं होता कि मुख से ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति हुई है तो अध्ययन-अध्यापन,यज्ञ आदि ब्राह्मण वर्ग ही करेगा अथवा शूद्र वर्ण पैरों से उत्पन्न है

तो सेवा एवं अन्य निकृष्ट कार्य ही करेंगे और पठन-पाठन या अन्य मंगल कार्य में प्रतिभागिता नहीं करेंगे। उदाहरण दृष्टव्य है-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥[1]

शनैः-शनैः उत्तर वैदिक काल में आते-आते वर्णव्यवस्था अधिक जटिल और परिभाषित हो गई थी और सम्भवतः ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वर्ग को विशेष अधिकार प्राप्त हो गए जिसके चलते महिलाओं की शिक्षा-दीक्षा भी प्रभावित हुई होगी। वैदिक काल में तो नारी की स्थिति अपेक्षाकृत उत्तर वैदिक काल एवं स्मृतिकाल से उत्कृष्ट थी। वैदिककाल में ही अनेक विदुषियाँ हुईं जिन्होंने अपने ज्ञान से, अपनी विद्वता से पुरुषों को भी लोहा मनवाया। वैसे वैदिक साहित्य में जो वर्णन प्राप्त हैं तदनुसार औपचारिक स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी कोई प्रामाणिक तथ्य तो उपलब्ध नहीं हैं किन्तु मैत्रेयी, गार्गी, घोषा, अपाला, लोपामुद्रा सदृश अनेक विदुषियों के उदाहरण मिलते हैं। अधिकांशतः विदुषियाँ या तो ऋषिकन्याएँ थीं या ऋषिपत्नियाँ अथवा क्षत्रिय वर्ण से सम्बद्ध थीं।

गार्गी गर्ग गोत्र के एक ब्राह्मण परिवार से सम्बद्ध थीं और गार्गी ही गार्गी वाचक्नवी के नाम से जानी जाती हैं। गार्गी वाचक्नवी का नाम उनके पिता ऋषि वाचक्नु के नाम पर रखा गया था। अष्टाध्यायी में गार्गी शब्द की व्युत्पत्ति निम्नवत् कही गई है -

गार्गी (स्त्री०)- गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री। गर्गादिभ्यो यञ्।[2] यञश्च[3] गार्ग्य +ङीप् = गार्गी

वे एक प्रसिद्ध प्राचीन भारतीय दार्शनिक थीं जो वेदव्याख्याता एवं ब्रह्मविद्या की जानकार भी थीं। गार्गी ने राजा जनक के दरबार में ऋषि याज्ञवल्क्य के साथ ब्रह्मज्ञान पर शास्त्रार्थ किया था जिसमें उन्होंने ऋषि से दो कठिन प्रश्न पूछने की चुनौती दी थी।

अथ ह वाचक्नव्युवाच ब्राह्मणा भगवन्तो हन्ता हमिमं द्वौ प्रश्नौ प्रक्ष्यामि तौ चेन्मे वक्ष्यति न जातु युष्माकमिमं कश्चिद् ब्रह्मोद्यं जेतेति पृच्छ गार्गीति।।[4]

अर्थात् फिर वाचक्नवी ने कहा, 'पूजनीय ब्राह्मणगण! अब मैं इनसे दो प्रश्न पूछूँगी। यदि ये मेरे उन प्रश्नों का उत्तर दे देंगे तो आपमें से कोई भी इनसे ब्रह्म सम्बन्धी वाद में नहीं जीत सकेगा।' [ब्राह्मण] 'अच्छा गार्गि! पूछ'।

बृहदारण्यक उपनिषद में मैत्रेयी, जो एक परम विदुषी, दार्शनिक और ब्रह्मवादिनी (वेद की व्याख्या करने वाली) के रूप में जगत्प्रसिद्ध हैं। मैत्रेयी को भारतीय बौद्धिक महिलाओं का प्रतीक के रूप में स्वीकारा जाता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में मैत्रेयी का वैदिक ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी के रूप में वर्णन उपलब्ध है। उद्धरण प्रस्तुत है-

अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुर्मैत्रेयी च कात्यायनी च तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव स्त्रीप्रज्ञैव तर्हि कात्यायन्यथ ह याज्ञवल्क्योऽन्यद् वृत्तमुपाकरिष्यन् ॥[5]

लोपामुद्रा महर्षि अगस्त्य की पत्नी थीं जो प्राचीन भारतीय वैदिक साहित्य की एक विख्यात दार्शनिक और विदुषी थीं। कुछ विद्वान के मतानुसार लोपामुद्रा को कौशितकी और वरप्रदा के नाम से भी जाना जाता है। लोपामुद्रा विदर्भराज की कन्या थीं और उन्होंने विवाहोपरान्त अपने पति अगस्त्य के साथ जीवनयापन करने के लिए उन्हीं की तरह वल्कल और मृगचर्म धारण कर अपने राजसी जीवन का त्याग करके एक आदर्श पतिव्रता स्त्री का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १७९वें सूक्त की मंत्रद्रष्टा ऋषि लोपामुद्रा हैं। ऋषि दम्पती लोपामुद्रा एवं अगस्त्य के बीच हुआ संवाद इस सूक्त का आधार है। इसमें ऋषियों ने परिपक्व शारीरिक एवं मानसिक रूप से तैयार होने पर ही दम्पतियों को सन्तानोत्पत्ति के लिए निर्दिष्ट किया गया है -

नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥[6]

अपाला, ऋषि अत्रि की पुत्री थीं और वे एक प्रसिद्ध विदुषी थीं। उन्हें चर्म रोग था और उनके पति द्वारा उनका परित्याग कर दिया गया था। इसके बाद, वे अपने पिता के आश्रम में वापस आकर रहने लगीं। उन्होंने कई मंत्रों की रचना की जो ऋग्वेद के ९१वें सूक्त में उपलब्ध हैं। ऋग्वेद मे उल्लिखित है-

एकनवतितमं सूक्तम्- (१-७) सप्तर्चस्यास्य सूक्तस्यात्रेय्यपाला ऋषिका । इन्द्रो देवता ।[7]

विदुषी अपाला द्वारा रचित यह एक महत्त्वपूर्ण सूक्त है। यह सूक्त अपाला सूक्त के नाम से भी जाना जाता है। इसमें अपाला ने अपने जीवन के अनुभवों और कष्टों के बारे में वर्णन किया है और इन्द्र देवता की स्तुति भी की है। ऋग्वेद के अनुसार घोषा एक महिला ऋषि थीं। ऋग्वेद के १०वें मण्डल के ४०वें सूक्त के दो मन्त्रों में घोषा को अश्विनीकुमारों द्वारा संरक्षित कहा गया है। घोषा कक्षीवान् ऋषि की पुत्री थीं। बाल्यावस्था में ही रोग से उसका शरीर विकृत हो गया था। शरीर विकृति के कारण उससे किसी ने भी विवाह करना स्वीकार नहीं किया।

एक बार उदासी के क्षणों में अचानक उसे ध्यान आया कि उसके पिता कक्षीवान् ने अश्विनीकुमारों की कृपा से आयु, शक्ति तथा स्वास्थ्य का लाभ प्राप्त किया था। घोषा ने भी तपस्या प्रारम्भ की और साठ वर्षीय वह मन्त्रद्रष्टा हुईं। ये भी कहा जाता है कि उन्होंने अश्विनीकुमारों की स्तुति की। अश्विनीकुमारों ने घोषा पर प्रसन्न होकर दर्शन दिए और तप के फलस्वरूप अपाला को नीरोग एवं रूप प्रदान किया तत्पश्चात् अश्विनीकुमारों की कृपा से ही उन्हें पुत्र एवं धनादि प्राप्त हुआ। ऋग्वेद में उल्लिखित है -

चतुर्दशर्चस्यास्य सूक्तस्य काक्षीवती घोषा ऋषिका। अश्विनौ देवते।[8]

उक्त वर्णित समस्त विदुषियों ने वैदिक मंत्रों की रचना की और वे सभी ब्रह्मविद्या की परम ज्ञाता थीं । तत्कालीन स्त्रियाँ दार्शनिक वाद-विवाद में सक्रिय रूप से प्रतिभागिता करती थीं किन्तु वैदिककालीन समस्त वर्णों की महिलाओं को शिक्षा, विद्वता और दार्शनिक चर्चाओं में भाग लेने के अवसर प्राप्त हुए

ऐसा कहना कदाचित् उचित न होगा क्योंकि यहां पर स्थालीपुलकन्यायेन हम यह प्रमाणित नहीं कर सकते। हाँड़ी में पकते हुए चावलों में से एक दाने से चावल पकने का पता तभी लगाया जा सकता है जब सम्पूर्ण चावल एक ही किस्म के हों। ठीक उसी तरह वैदिककालीन साहित्य में कहीं भी ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वर्ण के अतिरिक्त अन्य वर्णों की स्त्रियों के उद्धरण उपलब्ध नहीं हैं जिनके आधार पर यह पुष्टि की जा सके। साहित्य समाज का आईना कहा जाता है। यदि समस्त वर्णों की महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त होते तो कहीं तो अन्य वर्णों की स्त्रियों के उद्धरण उपलब्ध होते जिस तरह ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वर्ण की स्त्रियों के वर्णन प्राप्त होते हैं।

तत्कालीन स्त्री-शिक्षा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण- यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो उक्त दो वर्णों की स्त्रियों को तत्कालीन समाज में अपेक्षाकृत अधिक उत्कृष्ट एवं सम्मानजनक स्थान प्राप्त था ऐसा कहना भी सर्वथा अनुचित ही सिद्ध होगा क्योंकि जिन विदुषियों की इस शोधपत्र में पूर्व में चर्चा की गई है वे ऋषिकन्या, ऋषिपत्नियाँ अथवा क्षत्रिय वर्ण से सहैं। जब वर्णव्यवस्था की गई तो ब्राह्मण वर्ण को वेदाध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन, दान देना तथा दान ग्रहण करने का कार्य सौंपा गया, क्षत्रियों को प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ एवं अध्ययन करना तथा विषयों में आसक्ति न रखने का कार्य, वैश्य वर्ण के लिए पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना, व्यापार करना, ब्याज लेना तथा कृषिकार्य निर्धारित किया गया तथा ब्रह्मा ने उक्त तीनों वर्णों की ईर्ष्यारहित होकर सेवा करना, केवल यही एक कार्य शूद्र वर्ण के लिए निर्धारित किया। भारतीय समाज में धर्मशास्त्र के रूप में स्वीकृत मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में ऐसा वर्णन प्राप्त होता है। अतः स्वाभाविक सी बात है वर्णानुसार प्रदत्त कार्य जन्मानुसार परिवर्तित होते गए और उन-उन वर्णों में उत्पन्न सन्तान उन्हीं कार्यों में कुशलता प्राप्त करती गई जिन कार्यों में उनके पूर्वज लिप्त रहे।

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः।
मुखबाहुरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ।।
अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।।
प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ।।
पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ।।
एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ।।[9]

विदुषी की संज्ञा से किसे अभिहित किया जाता है। ऋग्वेदभाष्य में उल्लिखित है-

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्॥[10]

इस मन्त्र का भावार्थ है कि जो स्त्री, समस्त साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़ के पढ़ाती हैं, वे सब मनुष्यों की उन्नति करती हैं। उक्त उद्धरण से यह तो सुस्पष्ट है कि वेदों को पढ़ने वाली ही विदुषियाँ कहलाती हैं। शोधार्थिनी के संज्ञान में वैदिक साहित्य में कहीं भी गुरुकुल या आश्रम में पुरुष शिष्यों के समान स्त्रियों के विद्यार्जन सम्बन्धी उद्धरण उपलब्ध नहीं हैं। वेदों में तो फिर भी स्त्री के दार्शनिक संवाद के उद्धरण उपलब्ध हैं किन्तु उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों के लिए नियम और भी कठोर कर दिए गए। मनुस्मृति में वर्णों के कर्म निर्धारण के दौरान स्त्री का कहीं उल्लेख नहीं है अपितु स्त्री हेतु नियमों का उल्लेख अलग से किया गया है।

जैसा कि यह सर्वविदित है बालक और बालिकाओं में अनुकरणात्मक प्रवृत्ति होती है। सम्भवतः अपने आस-पास ऐसा वेदाध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन का वातावरण होने के कारण श्रुत-परम्परा से उन विदुषियों ने ज्ञानार्जन किया। सीखने की प्रक्रिया के चलते ही इतने गूढ़ चिन्तन-मनन एवं दार्शनिक विचारों को प्रकट करने की क्षमता विकसित हुई। सीखने की प्रक्रिया के विषय में मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचारों को निम्नविध् परिभाषित किया है -

जी० डी० बोआज के अनुसार -"**सीखना या अधिगम एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न आदतें, ज्ञान एवं दृष्टिकोण अर्जित करता है जो कि सामान्य जीवन की माँगों को पूरा करने के लिए आवश्यक है।**"[11]

सरटेन, नॉर्थ, स्ट्रेंज और चैपमैन के अनुसार - "**सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनुभूति या अभ्यास के फलस्वरूप व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तन होता है।**"[12]

यू०एस०ए० के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **एडवर्ड थार्नडाइक** ने शिक्षा मनोविज्ञान में सीखने की प्रक्रिया में तीन महत्त्वपूर्ण नियमों का वर्णन किया है -

क) अभ्यास का नियम
ख) तत्परता का नियम
ग) प्रभाव का नियम

उक्त तीनों नियमों में से पूर्वोक्त विदुषियों के सन्दर्भ में थार्नडाइक का अभ्यास का नियम अत्यन्त स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत करने में सक्षम है। यह नियम इस तथ्य पर आधारित है कि "**अभ्यास से व्यक्ति में पूर्णता आती है।**" **हिलगार्ड तथा बॉअर,** १९७५ ने इस नियम को परिभाषित करते हुए कहा है कि "**अभ्यास नियम यह बतलाता है कि अभ्यास करने से (उद्दीपक तथा अनुक्रिया) सम्बन्ध मजबूत होता है (उपयोग नियम) तथा अभ्यास रोक देने से सम्बन्ध कमजोर पड़ जाता है या विस्मरण हो जाता है (अनुपयोग नियम)**।" उक्त परिभाषा से पूर्णतः स्पष्ट है कि जब व्यक्ति किसी पाठ या विषय को बार-बार दुहराता है तो उसे सीख जाता हैं इसे ही थार्नडाइक ने उपयोग का नियम (Law of Use) की संज्ञा से अभिहित किया है।[13] इस प्रकार निरन्तर अनुकूल वातावरण में रहने वाली स्त्रियाँ भला कैसे सीखने की प्रक्रिया से वंचित रह जातीं। मानव प्रवृत्ति है कि बार-बार एक ही प्रक्रिया दुहराई जाए तो वह उस प्रक्रिया को अपने मनःमस्तिष्क में धारण कर लेता है। संभवतः ये तीनों ही नियम प्रभावकारी रहे हैं क्योंकि पूर्वोक्त

विदुषियों के सन्दर्भ में भी सीखने की क्षमता के साथ-साथ ज्ञानार्जन के प्रति तत्परता, अभ्यास एवं अनुकूल पारिवारिक वातावरण का प्रभाव, तीनों का सामंजस्य बनना स्वाभाविक सा प्रतीत हो रहा है।

इसी क्रम में अनुकरण का सिद्धान्त भी ध्यान देने योग्य है। **अरस्तु** ने **अनुकरण के सिद्धान्त** का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार अनुकरण सृजनात्मक दर्शन की प्रक्रिया एवं प्रायः पुनः सृजन का ही अपर नाम है।[14] अनुकरण शब्द की व्युत्पत्ति निम्नवत् है -

अनुकरणम् - अनु उपसर्गपूर्वक √कृ - करना अर्थ वाली धातु के साथ ल्युट् प्रत्यय के योग से हुई है जिसका अर्थ है - नकल करना, प्रतिलिपि, अनुरूपता, समानता।[15] अनुकरण की प्रक्रिया सीखने की वह प्रक्रिया है जिसमें बालक और बालिका बिना किसी प्रत्यक्ष शिक्षण के व्यवहार की नकल करते हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एवं शिक्षाविद् **डॉ० मैरीगोल्ड लोरे लिंटन** के अनुसार - "**अनुकरण से तात्पर्य दूसरों के व्यवहारों की नकल करने से है, चाहे नकल करने वाले व्यक्ति को उस व्यवहार की जानकारी प्रत्यक्ष निरीक्षण द्वारा या किसी दूसरे द्वारा सुनकर या अधिक प्रगतिशील समाज में पढ़कर मिली हो।**"[16]

अनुकरण के प्रकार - १.सहानुभूतिपूर्ण अनुकरण

२. विचारचालक अनुकरण

३. आरम्भिक अनुकरण

४. तार्किक अनुकरण

५. ऐच्छिक अनुकरण

६. अभिनयात्मक अनुकरण।

किसी को रोता देख स्वयं रोने लग जाना **सहानुभूतिपूर्ण अनुकरण** की श्रेणी में आता है जबकि यदि कोई व्यक्ति किसी के कार्य या व्यवहार को देखकर आन्तरिक रूप से प्रेरित होकर स्वयं ही वैसा आचरण करने लगे तो यह **विचारचालक अनुकरण** कहलाता है। यह स्वाभाविक अनुकरण के नाम से भी अभिहित किया जाता है। एक छोटा बच्चा जब नकल करता है तो वह **आरम्भिक अनुकरण** या **निरर्थक अनुकरण** कहलाता है। **तार्किक अनुकरण** में व्यक्ति अन्य व्यक्ति के व्यवहार को सोच-समझकर पुनरोत्पादन करता है जैसे- किसी छात्र द्वारा अपने अध्यापक का अनुकरण करना। जब बालक अथवा बालिका किसी अन्य का अनुकरण स्वेच्छा से करता है तो इसे **ऐच्छिक** या **उद्देश्यपूर्ण अनुकरण** कहते हैं। यह चेतन अनुकरण भी कहलाता है। किसी के व्यवहार का अभिनय करना **अभिनयात्मक अनुकरण** की श्रेणी में आता है। इस प्रकार यदि उक्त विदुषियों के ज्ञान या सीखने की प्रक्रिया को अनुकरण के सिद्धान्त के आधार पर परखा जाए तो लोपामुद्रा, गार्गी आदि के जान को हम विचारचालक अनुकरण अथवा स्वाभाविक अनुकरण के रूप में व्याख्यायित कर सकते हैं। वहीं मैत्रेयी एवं गार्गी के तार्किक संवादों को हम तार्किक अनुकरण की श्रेणी में रख सकते हैं।

टॉर्डे (१९०३)[17] ने अनुकरण सम्बन्धी तीन नियमों का प्रतिपादन किया है-

क) अनुकरण ऊपर से नीचे की ओर चलता है अर्थात् समाज के उच्च वर्ग या वरिष्ठजनों द्वारा किया गया कार्य या व्यवहार निम्न वर्ग अथवा बच्चों द्वारा अनुकरण किया जाता है।

ख) अनुकरण अन्दर से बाहर की ओर चलता है अर्थात् यह प्रक्रिया सर्वप्रथम अपने परिवार में या पड़ोस में शुरू होती है तत्पश्चात् धीरे-धीरे बाह्य लोगों का अनुकरण किया जाता है।

ग) अनुकरण ज्यामितीय क्रम में चलता है अर्थात् अनुकरण की गति काफी तीव्र होती है और निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होती है।

निष्कर्ष- अन्ततोगत्वा यह कहा जा सकता है कि जब निरन्तर पठन-पाठन वाले माहौल में रहने वाला स्त्री-समाज स्वतः ही अभ्यासेन, अनुसरणेन अथवा ऐच्छिकरूपेण ज्ञान की इस पराकाष्ठा पर पहुँच सकता है तो भला उन विदुषियों का क्या ही कहना। टॉर्डे द्वारा बताए गए उक्त नियमानुसार भी यह सुस्पष्ट है कि अनुकरण की प्रक्रिया घर के भीतर अर्थात् परिवार से शुरू होती हुई बाहर की ओर चलती है अतः अवश्यमेव वैदिककालीन विदुषियों ने भी सम्भवतः अपने पितृ एवं पूर्वजों से ये संस्कार प्राप्त करते हुए, उनका अनुकरण करते हुए उत्कृष्ट ज्ञानार्जन किया। वैदिककालीन नारियाँ भी सीखने की प्रक्रिया एवं अनुकरण के सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए आगे बढ़ीं और महिलाओं के लिए एक प्रतिमान सिद्ध हुईं।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1. **ऋग्वेद - १०/९०/११**
2. **अष्टाध्यायी - ४/१/१०५**
3. **अष्टाध्यायी - ४/१/१६**
4. **बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य- ३/८/१**
5. **बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य- ४/५/१**
6. **ऋग्वेद - १/१७९/४**
7. **ऋग्वेद - ८/९१**
8. **ऋग्वेद - १०/४०**
9. **मनुस्मृति - १/८७-९१**
10. **ऋग्वेदभाष्य - १/१६४/४१**
11. **https://uou.ac.in/sites/default/files/2023-04/A3.pdf**
12. **https://uou.ac.in/sites/default/files/2023-04/A3.pdf**
13. **https://uou.ac.in/sites/default/files/2023-04/A3.pdf**
14. **egyankosh.ac.in**
15. **संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे**
16. **१६.https://uou.ac.in/lecturenotes/social-science/MAPSY-18/PPT-%202.%20Social%20Psychology.pdf**
17. **१७.https://uou.ac.in/lecturenotes/social-science/MAPSY-18/PPT-%202.%20Social%20Psychology.pdf**
18. **१८.https://itihasnama.com/our-chepter/what-do-you-know-about-lopamudra-who-wrote-the-verses-of-rigveda**